हजारी प्रसाद द्विवेदी 17

जन्म : सन् 1907, आरत दुबे का छपरा, बलिया (उत्तर प्रदेश)

प्रमुख रचनाएँ : अशोक के फूल, कल्पलता, विचार और वितर्क, कुटज, विचार-प्रवाह, आलोक पर्व, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद(निबंध-संग्रह); बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचंद्रलेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा (उपन्यास); सूर साहित्य, कबीर, मध्यकालीन बोध का स्वरूप, नाथ संप्रदाय, कालिदास की लालित्य-योजना, हिंदी साहित्य का आदिकाल, हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी साहित्य: उद्‌भव और विकास (आलोचना-साहित्येतिहास); संदेश रासक, पृथ्वीराजरासो, नाथ-सिद्धों की बानियाँ (ग्रंथ-संपादन); विश्व भारती (शांतिनिकेतन) पत्रिका का संपादन;

पुरस्कार व सम्मान : साहित्य अकादेमी ('आलोक पर्व' पर) भारत सरकार द्वारा 'पद्‌मभूषण', लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट्

मृत्यु : सन् 1979, दिल्ली में

> मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुखकातर और संवेदनशील बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य कर्म भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास की रचनात्मक परिणति है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बांग्ला आदि भाषाओं व उनके साहित्य के साथ इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की व्यापकता व गहनता में पैठ कर उनका अगाध पांडित्य नवीन मानवतावादी सर्जना और आलोचना की क्षमता लेकर प्रकट हुआ है। वे ज्ञान को बोध और पांडित्य की सहृदयता में ढाल कर एक ऐसा रचना-संसार हमारे सामने उपस्थित करते हैं जो विचार की तेजस्विता, कथन के लालित्य और बंध की शास्त्रीयता

का संगम है। इस प्रकार उनमें एक साथ कबीर, रवींद्रनाथ व तुलसी एकाकार हो उठते हैं। इसके बाद, उससे जो प्राणधारा फूटती है वह लोकधर्मी रोमैंटिक धारा है, जो उनके उच्च कृतित्व को सहजग्राह्य बनाए रखती है। उनकी सांस्कृतिक दृष्टि जबरदस्त है। उसमें इस बात पर विशेष बल है कि भारतीय संस्कृति किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि समय-समय पर उपस्थित अनेक जातियों के श्रेष्ठ साधनांशों के लवण-नीर संयोग से उसका विकास हुआ है। उसकी मूल चेतना विराट मानवतावाद है, जिसके संस्पर्श से कला और साहित्य ही नहीं, यह संपूर्ण जीवन ही सौंदर्य व आनंद से परिपूर्ण हो उठता है।

द्विवेदी जी के सभी उपन्यास समाज के जात-पाँत और मज़हबों में विभाजन और आधी आबादी (स्त्री)के दलन की पीड़ा को सबसे बड़े सांस्कृतिक संकट के रूप पहचानने, रचने और सामंजस्य में समाधान खोजने का साहित्य है। वे स्त्री को सामाजिक अन्याय का सबसे बड़ा शिकार मानते हैं तथा सांस्कृतिक ऐतिहासिक संदर्भ में उसकी पीड़ा का गहरा विश्लेषण करते हुए सरस श्रद्धा के साथ उसकी महिमा प्रतिष्ठित करते हैं– विशेषकर ***बाणभट्ट की आत्मकथा*** *में। मानवता और लोक से विमुख कोई भी विज्ञान, तंत्र-मंत्र, विश्वास या सिद्धांत उन्हें ग्राह्य नहीं है और मानव की जिजीविषा और विजययात्रा में उनकी अखंड आस्था है। इसी से वे मानवतावादी साहित्यकार व समीक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।*

द्विवेदी जी का आलोचक व्यक्तित्व हिंदी-चिंताधारा की सहज लोक-परंपरा को पहचान लेता है और उसी से संबद्ध नाथों-सिद्धों और कबीर से हिंदी की साहित्य-परंपरा को जोड़ कर उसे एक प्रगतिशील मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है। भक्तिकाल को भारतीय चिंताधारा का सहज विकास मानने वाले इतिहासकार के रूप में उनकी भूमिका ऐतिहासिक महत्त्व रखती है।

द्विवेदी जी का निबंध-साहित्य इस अर्थ में बड़े महत्त्व का है कि साहित्य-दर्शन तथा समाज-व्यवस्था संबंधी उनकी कई मौलिक उद्‌भावनाएँ मूलतः निबंधों में ही मिलती हैं, पर यह विचार-सामग्री पांडित्य के बोझ से आक्रांत होने की जगह उसके बोध से अभिषिक्त हैं। अपने लेखन द्वारा निबंध-विधा को सर्जनात्मक साहित्य की कोटि में ला देने वाले द्विवेदी जी के ये निबंध व्यक्तित्व-व्यंजना और आत्मपरक शैली से युक्त हैं।

यहाँ प्रस्तुत ललित निबंध ***शिरीष के फूल*** *लेखक के संग्रह* ***कल्पलता*** *से उद्धृत है। इसमें लेखक आँधी, लू और गरमी की प्रचंडता में भी अवधूत की तरह* ***अविचल*** *होकर कोमल पुष्पों का सौंदर्य बिखेर रहे शिरीष के माध्यम से मनुष्य की अजेय जिजीविषा और तुमुल कोलाहल कलह के बीच धैर्यपूर्वक, लोक के साथ चिंतारत, कर्तव्यशील बने रहने को महान मानवीय मूल्य के रूप में स्थापित करता है। ऐसी भावधारा में बहते हुए उसे देह-बल के ऊपर आत्मबल का महत्त्व सिद्ध करने वाली इतिहास-विभूति गांधीजी की याद हो आती है तो वह गांधीवादी मूल्यों के अभाव की पीड़ा से भी कसमसा उठता है। निबंध की शुरुआत में लेखक शिरीष पुष्प की कोमल सुंदरता के जाल बुनता है, फिर उसे भेदकर उसके इतिहास में और फिर उसके ज़रिये मध्यकाल के सांस्कृतिक इतिहास में पैठता है; फिर तत्कालीन जीवन व सामंती वैभव-विलास को सावधानी से उकेरते हुए उसका खोखलापन भी उजागर करता है। लेखक अशोक के फूल के भूल जाने की तरह ही शिरीष को नज़रअंदाज़ किए जाने की साहित्यिक घटना से आहत है और इसी में उसे सच्चे कवि का तत्त्व-दर्शन भी होता है। उसके अनुसार योगी की अनासक्त शून्यता और प्रेमी की सरस पूर्णता एक साथ उपलब्ध होना सत्कवि होने की एकमात्र शर्त है। ऐसा कवि ही समस्त प्राकृतिक और मानवीय वैभव में रमकर भी चुकता नहीं और निरंतर आगे बढ़ते जाने की प्रेरणा देता है।*

शिरीष के पुराने फलों की अधिकार-लिप्सु खड़खड़ाहट और नए पत्ते-फलों द्वारा उन्हें धकियाकर बाहर निकालने में लेखक साहित्य, समाज व राजनीति में पुरानी और नयी पीढ़ी के द्वंद्व को संकेतित करता है तथा स्पष्ट रूप से पुरानी पीढ़ी और हम सब में नयेपन के स्वागत का साहस देखना चाहता है। इस निबंध का शिल्प इसी में चर्चित इक्षुदंड की तरह है– सांस्कृतिक संदर्भों व शब्दावली की भड़कीली खोल के भीतर सहज भावधारा के मधुरस से युक्त। यह हर तरह से आस्वाद्य और प्रयोजनीय है तथा इस प्रकार लेखक के प्रतिनिधि निबंधों में से एक है।

शिरीष के फूल

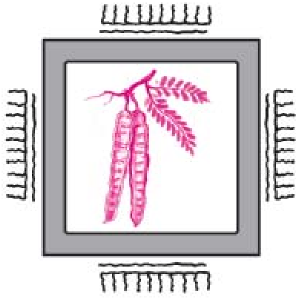

जहाँ बैठ के यह लेख लिख रहा हूँ उसके आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, शिरीष के अनेक पेड़ हैं। जेठ की जलती धूप में, जबकि धरित्री निर्धूम अग्निकुंड बनी हुई थी, शिरीष नीचे से ऊपर तक फूलों से लद गया था। कम फूल इस प्रकार की गरमी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं। कर्णिकार और आरग्वध (अमलतास) की बात मैं भूल नहीं रहा हूँ। वे भी आस–पास बहुत हैं। लेकिन शिरीष के साथ आरग्वध की तुलना नहीं की जा सकती। वह पद्रंह–बीस दिन के लिए फूलता है, वसंत ऋतु के पलाश की भाँति। कबीरदास को इस तरह पद्रंह दिन के लिए लहक उठना पसंद नहीं था। यह भी क्या कि दस दिन फूले और फिर खंखड़-के-खंखड़–'दिन दस फूला फूलिके खंखड़ भया पलास!' ऐसे दुमदारों से तो लँडूरे भले। फूल है शिरीष। वसंत के आगमन के साथ लहक उठता है, आषाढ़ तक जो निश्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भरे भादों में भी निर्घात फूलता रहता है। जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजेयता का मंत्र प्रचार करता रहता है। यद्यपि कवियों की भाँति हर फूल-पत्ते को देखकर मुग्ध होने लायक हृदय विधाता ने नहीं दिया है, पर नितांत ठूँठ भी नहीं हूँ। शिरीष के पुष्प मेरे मानस में थोड़ा हिल्लोल ज़रूर पैदा करते हैं।

शिरीष के वृक्ष बड़े और छायादार होते हैं। पुराने भारत का रईस जिन मंगल-जनक वृक्षों को अपनी वृक्ष-वाटिका की चहारदीवारी के पास लगाया करता था, उनमें एक शिरीष भी है। (वृहतसंहिता 55,13) अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग और शिरीष के छायादार और घनमसृण हरीतिमा से परिवेष्टित वृक्ष–वाटिका ज़रूर बड़ी मनोहर दिखती होगी। वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में बताया है कि वाटिका के सघन छायादार वृक्षों की छाया में ही झूला(प्रेंखा दोला) लगाया जाना चाहिए। यद्यपि पुराने कवि बकुल के पेड़ में ऐसी दोलाओं को लगा देखना चाहते थे, पर शिरीष भी क्या बुरा है! डाल इसकी अपेक्षाकृत कमज़ोर ज़रूर होती है, पर उसमें झूलनेवालियों का वज़न भी तो बहुत ज़्यादा नहीं होता। कवियों की यही तो बुरी आदत है कि वजन का एकदम खयाल नहीं करते। मैं तुंदिल नरपतियों की बात नहीं कह रहा हूँ, वे चाहें तो लोहे का पेड़ बनवा लें।

शिरीष का फूल संस्कृत-साहित्य में बहुत कोमल माना गया है। मेरा अनुमान है कि कालिदास ने यह बात शुरू-शुरू में प्रचार की होगी। उनका इस पुष्प पर कुछ पक्षपात था (मेरा भी है)। कह गए हैं, शिरीष पुष्प केवल भौंरों के पदों का कोमल दबाव सहन कर सकता है, पक्षियों का बिलकुल नहीं– 'पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष पुष्पं न पुनः पतत्रिणाम्।' अब मैं इतने बड़े कवि की बात का विरोध कैसे करूँ? सिर्फ विरोध करने की हिम्मत न होती तो भी कुछ कम बुरा नहीं था, यहाँ तो इच्छा भी नहीं है। खैर, मैं दूसरी बात कह रहा था। शिरीष के

फूलों की कोमलता देखकर परवर्ती कवियों ने समझा कि उसका सब-कुछ कोमल है! यह भूल है। इसके फल इतने मज़बूत होते हैं कि नए फूलों के निकल आने पर भी स्थान नहीं छोड़ते। जब तक नए फल-पत्ते मिलकर, धकियाकर उन्हें बाहर नहीं कर देते तब तक वे डटे रहते हैं। वसंत के आगमन के समय जब सारी वनस्थली पुष्प-पत्र से मर्मरित होती रहती है, शिरीष के पुराने फल बुरी तरह खड़खड़ाते रहते हैं। मुझे इनको देखकर उन नेताओं की बात याद आती है, जो किसी प्रकार ज़माने का रुख नहीं पहचानते और जब तक नई पौध के लोग उन्हें धक्का मारकर निकाल नहीं देते तब तक जमे रहते हैं।

मैं सोचता हूँ कि पुराने की यह अधिकार-लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जाती? ज़रा और मृत्यु, ये दोनों ही जगत के अतिपरिचित और अतिप्रामाणिक सत्य हैं। तुलसीदास ने अफ़सोस के साथ इनकी सच्चाई पर मुहर लगाई थी–'धरा को प्रमान यही तुलसी जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना!' मैं शिरीष के फूलों को देखकर कहता हूँ कि क्यों नहीं फलते ही समझ लेते बाबा कि झड़ना निश्चित है! सुनता कौन हैं? महाकालदेवता सपासप कोड़े चला रहे हैं, जीर्ण और दुर्बल झड़ रहे हैं, जिनमें प्राणकण थोड़ा भी ऊर्ध्वमुखी है, वे टिक जाते हैं। दुरंत प्राणधारा और सर्वव्यापक कालाग्नि का संघर्ष निरंतर चल रहा है। मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने हैं, वहीं देर तक बने रहें तो कालदेवता की आँख बचा जाएँगें। भोले हैं वे। हिलते-डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किए रहो तो कोड़े की मार से बच भी सकते हो। जमे कि मरे!

एक-एक बार मुझे मालूम होता है कि यह शिरीष एक अद्भुत अवधूत है। दुःख हो या सुख, वह हार नहीं मानता। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। जब धरती और आसमान जलते रहते हैं, तब भी यह हज़रत न जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं। मौज में आठों याम मस्त रहते हैं। एक वनस्पतिशास्त्री ने मुझे बताया है कि यह उस श्रेणी का पेड़ है जो वायुमंडल से अपना रस खींचता है। ज़रूर खींचता होगा। नहीं तो भयंकर लू के समय इतने कोमल तंतुजाल और ऐसे सुकुमार केसर को कैसे उगा सकता था? अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएँ निकली हैं। कबीर बहुत-कुछ इस शिरीष के समान ही थे, मस्त और बेपरवा, पर सरस और मादक। कालिदास भी ज़रूर अनासक्त योगी रहे होंगे। शिरीष के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और 'मेघदूत' का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त अनाविल उन्मुक्त हृदय में उमड़ सकता है। जो कवि अनासक्त नहीं रह सका, जो फक्कड़ नहीं बन सका, जो किए-कराए का लेखा-जोखा मिलाने में उलझ गया, वह भी क्या कवि है? कहते हैं कर्णाट-राज की प्रिया विज्जिका देवी ने गर्वपूर्वक कहा था कि एक कवि ब्रह्मा थे, दूसरे वाल्मीकि और तीसरे व्यास। एक ने वेदों को दिया, दूसरे ने रामायण को और तीसरे ने महाभारत को। इनके अतिरिक्त और कोई यदि कवि होने का दावा करे तो मैं

कर्णाट-राज की प्यारी रानी उनके सिर पर अपना बायाँ चरण रखती हूँ– 'तेषां मूर्ध्नि ददामि वामचरणं कर्णाट-राजप्रिया!' मैं जानता हूँ कि इस उपालंभ से दुनिया का कोई कवि हारा नहीं है, पर इसका मतलब यह नहीं कि कोई लजाया नहीं तो उसे डाँटा भी न जाए। पर मैं कहता हूँ कवि बनना है मेरे दोस्तो, तो फक्कड़ बनो। शिरीष की मस्ती की ओर देखो। लेकिन अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नहीं। मरने दो!

कालिदास वज़न ठीक रख सकते थे, क्योंकि वे अनासक्त योगी की स्थिर-प्रज्ञता और विदग्ध प्रेमी का हृदय पा चुके थे। कवि होने से क्या होता है? मैं भी छंद बना लेता हूँ, तुक जोड़ लेता हूँ और कालिदास भी छंद बना लेते थे–तुक भी जोड़ ही सकते होंगे इसलिए हम दोनों एक श्रेणी के नहीं हो जाते। पुराने सहृदय ने किसी ऐसे ही दावेदार को फटकारते हुए कहा था–'वयमपि कवय: कवय: कवयस्ते कालिदासाद्या!' मैं तो मुग्ध और विस्मय-विमूढ़ होकर कालिदास के एक-एक श्लोक को देखकर हैरान हो जाता हूँ। अब इस शिरीष के फूल का ही एक उदाहरण लीजिए। शकुंतला बहुत सुंदर थी। सुंदर क्या होने से कोई हो जाता है? देखना चाहिए कि कितने सुंदर हृदय से वह सौंदर्य डुबकी लगाकर निकला है। शकुंतला कालिदास के हृदय से निकली थी। विधाता की ओर से कोई कार्पण्य नहीं था, कवि की ओर से भी नहीं। राजा दुष्यंत भी अच्छे-भले प्रेमी थे। उन्होंने शकुंतला का एक चित्र बनाया था; लेकिन रह-रहकर उनका मन खीझ उठता था। उहूँ, कहीं-न-कहीं कुछ छूट गया है। बड़ी देर के बाद उन्हें समझ में आया कि शकुंतला के कानों में वे उस शिरीष पुष्प को देना भूल गए हैं, जिसके केसर गंडस्थल तक लटके हुए थे, और रह गया है शरच्चंद्र की किरणों के समान कोमल और शुभ्र मृणाल का हार–

कालिदास सौंदर्य के बाह्य आवरण को भेदकर उसके भीतर तक पहुँच सकते थे, दुख हो कि सुख, वे अपना भाव-रस उस अनासक्त कृपीवल की भाँति खींच लेते थे जो निर्दलित ईक्षुदंड से रस निकाल लेता है। कालिदास महान थे, क्योंकि वे अनासक्त रह सके थे। कुछ इसी श्रेणी की अनासक्ति आधुनिक हिंदी कवि सुमित्रानंदन पंत में है। कविवर रवींद्रनाथ में यह अनासक्ति थी। एक जगह उन्होंने लिखा–'राजोद्यान का सिंहद्वार कितना ही अभ्रभेदी क्यों न हो, उसकी शिल्पकला कितनी ही सुंदर क्यों न हो, वह यह नहीं कहता कि हममें आकर ही सारा रास्ता समाप्त हो गया। असल गंतव्य स्थान उसे अतिक्रम करने के बाद ही है, यही बताना उसका कर्तव्य है।' फूल हो या पेड़, वह अपने-आप में समाप्त नहीं है। वह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अँगुली का वह इशारा है।

शिरीष तरु सचमुच पक्के अवधूत की भाँति मेरे मन में ऐसी तरंगें जगा देता है जो ऊपर की ओर उठती रहती हैं। इस चिलकती धूप में इतना इतना सरस वह कैसे बना रहता है? क्या ये बाह्य परिवर्तन–धूप, वर्षा, आँधी, लू–अपने आपमें सत्य नहीं हैं? हमारे देश के ऊपर

से जो यह मार-काट, अग्निदाह, लूट-पाट, खून-खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था। क्यों मेरा मन पूछता है कि ऐसा क्यों संभव हुआ? क्योंकि शिरीष भी अवधूत है। शिरीष वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर है। गांधी भी वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर हो सका था। मैं जब-जब शिरीष की ओर देखता हूँ तब तब हूक उठती है—हाय, वह अवधूत आज कहाँ है!

अभ्यास

पाठ के साथ

1. लेखक ने शिरीष को कालजयी अवधूत(संन्यासी)की तरह क्यों माना है?
2. ***हृदय की कोमलता को बचाने के लिए व्यवहार की कठोरता भी कभी-कभी ज़रूरी हो जाती है***– प्रस्तुत पाठ के आधार पर स्पष्ट करें।
3. द्विवेदी जी ने शिरीष के माध्यम से कोलाहल व संघर्ष से भरी जीवन-स्थितियों में अविचल रह कर जिजीविषु बने रहने की सीख दी है। स्पष्ट करें।
4. ***हाय वह अवधूत आज कहाँ है!*** ऐसा कह कर लेखक ने आत्मबल पर देह-बल के वर्चस्व की वर्तमान सभ्यता के संकट की ओर संकेत किया है। कैसे?
5. कवि (साहित्यकार)के लिए अनासक्त योगी की स्थिरप्रज्ञता और विदग्ध प्रेमी का हृदय– एक साथ आवश्यक हैं। ऐसा विचार प्रस्तुत कर लेखक ने साहित्य-कर्म के लिए बहुत ऊँचा मानदंड निर्धारित किया है। विस्तारपूर्वक समझाएँ।
6. सर्वग्रासी काल की मार से बचते हुए वही दीर्घजीवी हो सकता है, जिसने अपने व्यवहार में जड़ता छोड़कर नित बदल रही स्थितियों में निरंतर अपनी गतिशीलता बनाए रखी है। पाठ के आधार पर स्पष्ट करें।
7. आशय स्पष्ट कीजिए–
   - क) दुरंत प्राणधारा और सर्वव्यापक कालाग्नि का संघर्ष निरंतर चल रहा है। मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने हैं, वहीं देर तक बने रहें तो कालदेवता की आँख बचा पाएँगे। भोले हैं वे। हिलते-डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किए रहो तो कोड़े की मार से बच भी सकते हो। जमे कि मरे।
   - ख) जो कवि अनासक्त नहीं रह सका, जो फक्कड़ नहीं बन सका, जो किए-कराए का लेखा-जोखा मिलाने में उलझ गया, वह भी क्या कवि है?.....मैं कहता हूँ कि कवि बनना है मेरे दोस्तो, तो फक्कड़ बनो।
   - ग) फल हो या पेड़, वह अपने-आप में समाप्त नहीं है। वह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अँगुली है। वह इशारा है।

पाठ के आसपास

1. शिरीष के पुष्प को ***शीतपुष्प*** भी कहा जाता है। ज्येष्ठ माह की प्रचंड गरमी में फूलने वाले फूल को ***शीतपुष्प*** संज्ञा किस आधार पर दी गई होगी?
2. ***कोमल*** और ***कठोर*** दोनों भाव किस प्रकार गांधीजी के व्यक्तित्व की विशेषता बन गए।
3. आजकल अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में भारतीय फूलों की बहुत माँग है। बहुत से किसान साग-सब्ज़ी व अन्न उत्पादन छोड़ फूलों की खेती की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इसी मुद्दे को विषय बनाते हुए वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन करें।
4. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इस पाठ की तरह ही वनस्पतियों के संदर्भ में कई व्यक्तित्त्व व्यंजक ललित निबंध और भी लिखे हैं—कुटज, आम फिर बौरा गए, अशोक के फूल, देवदारु आदि। शिक्षक की सहायता से इन्हें ढूँढ़िए और पढ़िए।
5. द्विवेदी जी की वनस्पतियों में ऐसी रुचि का क्या कारण हो सकता है? आज साहित्यिक रचना-फलक पर प्रकृति की उपस्थिति न्यून से न्यून होती जा रही है। तब ऐसी रचनाओं का महत्त्व बढ़ गया है। प्रकृति के प्रति आपका दृष्टिकोण रुचिपूर्ण है या उपेक्षामय इसका मूल्यांकन करें?

भाषा की बात

दस दिन फूले और फिर खंखड़-खंखड़ इस लोकोक्ति से मिलते-जुलते कई वाक्यांश पाठ में हैं। उन्हें छाँट कर लिखें।

इन्हें भी जानें

अशोक वृक्ष– भारतीय साहित्य में बहुचर्चित एक सदाबहार वृक्ष। इसके पत्ते आम के पत्तों से मिलतें हैं। वसंत-ऋतु में इसके फूल लाल-लाल गुच्छों के रूप में आते हैं। इसे कामदेव के पाँच पुष्पवाणों में से एक माना गया हैं इसके फल सेम की तरह होते हैं। इसके सांस्कृतिक महत्त्व का अच्छा चित्रण हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने निबंध **अशोक के फूल** में किया है। भ्रमवश आज एक दूसरे वृक्ष को अशोक कहा जाता रहा है और मूल पेड़ (जिसका वानस्पतिक नाम सराका इंडिका है।) को लोग भूल गए हैं। इसकी एक जाति श्वेत फूलों वाली भी होती है।

अरिष्ठ वृक्ष– रीठा नामक वृक्ष। इसके पत्ते चमकीले हरे होते हैं। फल को सुखाकर पेड़ की डालियों व तने पर जगह-जगह काँटे उभरे होते हैं, जो बाल और कपड़े धोने के काम भी आता है।

आरग्वध वृक्ष–लोक में उसे अमलतास कहा जाता है। भीषण गरमी की दशा में जब इसका पेड़ पत्रहीन ठूँठ सा हो जाता है, पर इस पर पीले-पीले पुष्प गुच्छे लटके हुए मनोहर दृश्य उपस्थित करते हैं। इसके फल लगभग एक डेढ़ फुट के बेलनाकार होते हैं जिसमें कठोर बीज होते हैं।

शिरीष वृक्ष– लोक में शिरीष नाम से मशहूर पर एक मैदानी इलाके का वृक्ष है। आकार में विशाल होता है पर पत्ते बहुत छोट-छोटे होते है। इसके फूलों में पंखुड़ियों की जगह रेशे-रेशे होते हैं।

शब्द-छवि

कर्णिकार	– कनेर (या कनियार) नामक फूल
आरग्वध	– अमलतास नामक फूल
खंखड़	– ठूँठ/शुष्क
निर्घात	– बिना आघात या बाधा के
अवधूत	– सांसारिक बंधनों व विषय-वासनाओं से ऊपर उठ गया संन्यासी
लँडूरे	– पूँछ विहीन
हिल्लोल	– लहर
अरिष्ठ	– रीठा नामक वृक्ष
पुन्नाग	– एक बड़ा सदाबहार पेड़
घनमसृण	– घना-चिकना (गहरा चिकना/मुलायम)
परिवेष्टित	– ढँका हुआ
दोला	– झूला
बकुल	– मौलसिरी का पेड़
तुंदिल	– तोंद वाला / मोटे पेट वाला
मर्मरित	– (पत्तों की) खड़खड़ाहट या सरसराहट ध्वनि से युक्त
ऊर्ध्वमुखी	– प्रगति की दिशा में
दुरंत	– जिसका विनाश होना मुश्किल है
हज़रत	– श्रीमान (व्यंग्यात्मक स्वर)
अनासक्त	– विषय-भोग से ऊपर उठा हुआ
अनाविल	– स्वच्छ
कर्णाट	– प्राचीन काल का कर्नाटक राज्य
स्थिरप्रज्ञता	– अविचल बुद्धि की अवस्था
विदग्ध	– अच्छी तरह से तपा हुआ
कार्पण्य	– कृपणता
गण्डस्थल	– गाल
कृषीवल	– किसान
निर्दलित	– भलीभाँति निचोड़ा हुआ
ईक्षुदण्ड	– ईख (गन्ने) का तना
अभ्रभेदी	– गगनचुंबी
सपासप	– ध्वन्यात्मक शब्द जो कोड़े पड़ने की आवाज़ के लिए उपयुक्त होता है। यहाँ 'जल्दी-जल्दी' अर्थ रखता है।